सफाई कामगारों की स्थिति

सफाई कामगार देश को साफ़-सुथरा रखने का काम करते है। सड़कें-गलियाँ, सीवर-नालियाँ, शौचालय, स्कूल-कॉलेज, दफ्तर-अस्पताल; नेताओं और अमीरों के घर आदि की साफ़-सफाई का काम सफाई कामगार ही करते हैं। सफाई का काम बहुत जरुरी काम होता है। अगर सफाई मजदूर काम करना बंद कर दे, तो पूरा देश गन्दगी से भर जायेगा और चारों तरफ बीमारियाँ फ़ैल जायेंगी। एक डॉक्टर बीमारी का ईलाज करता है, लेकिन एक सफाई कर्मचारी गंदगी उठाकर बीमारियों को पैदा होने और फैलने से रोकता है।

महत्त्वपूर्ण है कि हम यह समझें कि किस प्रकार सबसे शोषित-उत्पीड़ित समुदाय के लोग सफाई का काम करने, कूड़ा बीनने, मल साफ करने, मैला ढोने का काम करने के लिए मजबूर हैं। ऐतिहासिक तौर पर यह काम विभिन्न दलित जातियों से करवाया जाता था। इसके पीछे उनकी बिलकुल पिछड़ी स्थिति और समाज की वर्चस्वशाली जातियों की दबंगई थी। कालांतर में वाल्मीकि जाति इस काम में लगी हुई, सबसे बड़ी जाति बनी, जिन्हें विभिन्न नगरपालिकाओं द्वारा खासकर उत्तर भारत में सफाई के काम के लिए नौकरी पर रखा गया। परंतु, आज सभी बड़े शहरों में बेहद ही बदहाल स्थिति में रह रहे बांग्लादेशी प्रवासी कामगार भी बड़ी संख्या में यह काम कर रहे हैं। इस काम का सीधे-सीधे जाति व्यवस्था और वर्ग शोषण के साथ रिश्ता है। ऐतिहासिक तौर पर पिछड़ी जातियों से यह काम करवाया जाना आज भी आम है। इसका उदाहरण न केवल उत्तर भारत में, बल्कि सुदूर उत्तर में कश्मीर में भी देखा जा सकता है, जहाँ पर बहुसंख्यक आबादी मुसलमान समुदाय से हैं। शेख अगर किसी के नाम के पहले आता है तो वह उच्च जाति का होता है, और अगर नाम के बाद में आता है तो वह सफाई का काम कर रहे लोगों की जाति का सूचक होता है।

जातीय काम में फंसे कामगारों को ऐतिहासिक रूप से शोषण झेलने और बदहाली की स्थिति के कारण आज भी यह काम करना पड़ रहा है। पिछले दशकों में राज्य एक आदर्श नियोक्ता की भूमिका अदा करता था। सरकारी संस्थानों में नौकरी कर रहे सफाई कर्मचारियों को पक्की नौकरी दी जाती थी, जिसके तहत उन्हें उनके श्रम अधिकार भी मिलते थे, और उनको नौकरी से मनमाने तौर पर निकाला जाना कठिन था। इस स्थिति को पाने के लिए अन्य सफाई कर्मचारी राज्य व्यवस्था पर संघर्ष के माध्यम से दबाव डालते थे कि उन्हें भी पक्की नौकरी और सभी श्रम अधिकार मुहैया हो पाएँ। लेकिन अब ठेकेदारी प्रथा के हर जगह व्याप्त होने से यह व्यवस्था भी पूरी तरह से धराशायी हो गयी है। राज्य अपनी ज़िम्मेदारी से पल्ला झाड़ चुका है। और अब आदर्श नियोक्ता का पूरा मसौदा ही खत्म किया जा रहा है, जिससे बहुसंख्यक सफाई कामगारों हमेशा एक शोषणकारी स्थिति में फंसे रहने के लिए मजबूर हैं, और उन्हें उनके श्रम अधिकारों से भी वंचित होना पड़ रहा है।

सफाई कर्मचारियों के हालात बहुत ख़राब है, जिसके लिए सरकारें सीधे-सीधे जिम्मेदार है। सफाई कार्मगारों की बदहाल स्थिति का सबसे बड़ा कारण ठेका प्रथा है। सफाई का काम सबसे महत्त्वपूर्ण काम होने के बावजूद इस काम को स्थायी काम न मानकर ज़्यादातर जगह पर यह काम अस्थायी काम माना जाता रहा है। ठेका प्रथा उन्मूलन कानून, 1970 के अनुसार भी जो काम स्थायी चरित्र का है, उसके लिए स्थायी नौकरी होनी चाहिए। मगर स्थायी प्रकृति का काम होने के बावजूद भी ज़्यादातर जगह पर यह काम ठेके पर कराया जाता है। यह ठेकाकरण हर जगह व्याप्त है, यहाँ तक खुद सरकारी संस्थानों में, नगरपालिकाओं में, सरकारी दफ्तरों में, इत्यादि। सफाई के काम का पूरी तरह ठेकाकरण किए जाने से सफाई मजदूरों का बे-हिसाब शोषण बढ़ा है।

ठेका बदलने पर सफाई कर्मचारियों को काम से निकाल दिया जाना आम बात है। उसी जगह पर फिर से नियुक्त होने के लिए कामगारों को अक्सर ठेकेदार कम्पनी को दसियों हजार रूपये की रिश्वत देनी पड़ती है। ठेकेदार या सुपरवाइजर उन्हें कभी भी मनमाने तरीके से निकाल देता है या बदली कर देता है। यही नहीं सफाई कामगारों से न्यूनतम मजदूरी से भी काफी कम वेतन पर काम करवाया जाता है। कई महीनों तक तनख्वाह नहीं दी जाती है। फ्री में ओवरटाइम करवाया जाता है।

इन सब के बदले ज्यादातर सफाई कर्मचारियों को न तो ESI सुविधा मिलती है, न ही PF मिलता है और न ही बोनस दिया जाता है और एक दिन की छुट्टी करने पर दो या तीन दिन के रुपये काट लिए जाते हैं। महिला मजदूरों से बदसलूकी और यौन उत्पीड़न किया जाता है। यही नहीं, ठेकेदारी प्रथा के कारण ही मैला ढोने और मल साफ करने की प्रथा भी आज तक चली आ रही है। मैला ढोने की प्रथा का 1993 में उन्मूलन कानून बना था, जिसके द्वारा इस प्रथा को पूर्णतः खत्म करने की कोशिश की गयी। लेकिन, सरकारों के लचर व उदासीन रवैये के चलते अभी भी हाथों से मल साफ करने, मैला ढोने की प्रथा को खत्म नहीं किया जा सका है। देश में आज भी सीवर और गटर की सफाई का काम हाथों से हो रहा है। मजदूरों को 200-300 रुपये में गटर के अन्दर उतार दिया जाता है, जिसके कारण सीवर से निकलने वाली जहरीली गैस की चपेट में आने से, उनकी मौत हो जाती है। इस तरह हर साल हज़ारों सफाई मजदूर सीवर की सफाई के दौरान अपनी जान गंवा देते हैं। और यह सब सरकारों की नाक के नीचे खुलेआम हो रहा है। आंकड़ों के अनुसार, भारत में 26 लाख सूखे शौचालय हैं, जिनसे मल उठाने के लिए सफाई कर्मचारियों को लगाया जाता है। करीब 7 लाख 70 हज़ार कामगारों को हर साल सीवर में उतारा जाता है, जिसकी जानकारी शासन-प्रशासन के लोगों को बखूबी रहती है। यही नहीं, रेलवे स्टेशनों पर करीब 36,176 सफाई कर्मचारियों को ट्रैक, इत्यादि से कूड़ा उठाने, मल साफ करने के लिए नियुक्त किया गया है। ज़ाहिर है कि इतने बड़े आंकड़े बिना शासन-प्रशासन और सरकार की जानकारी के बिना नहीं हो सकते। विडम्बना है कि इतने बड़े आंकड़ों के बावजूद सरकारों का रवैया पूरी तरह से उदासीन बना हुआ है।

आज ठेकेदारी व्यवस्था सरकार और उसकी संस्थाओं में भी व्याप्त है। मैं सफाई कामगारों, खासकर महिला कामगारों की स्थिति दो सरकारी शिक्षण संस्थानों के उदाहरण के माध्यम से समझाना चाहती हूँ। गौर करने की बात है कि जिन संस्थानों का मैं उदाहरण देने वाली हूँ वो दोनों ही दिल्ली सरकार के अधीन हैं, जो अपने चुनावी घोषणापत्र में यह वादा कर चुकी है कि सभी ठेका कामगारों को पक्की नौकरी दी जाएगी। इसके बावजूद आज तक इन दोनों संस्थानों में ठेकेदारी व्यवस्था चल रही है। कमोबेश यही स्थिति पूरे उत्तर भारत में व्याप्त है। साथ ही, आमतौर पर राज्य सरकारें सफाई कामगारों की खराब हालत के पीछे बजट न होने की बात कहती रही हैं। लेकिन मैं दिल्ली के उदाहरण से बताना चाहती हूँ कि मामला बजट की कमी का नहीं है, क्योंकि दिल्ली एक राजस्व-सम्पन्न राज्य है। बल्कि समस्या है राज्य सरकारों के रवैये में जो ठेकेदारी व्यवस्था को कायम रखना चाहती हैं। मैं तमाम संघर्षों में शामिल रही हूँ, और दिल्ली के इन दो विश्वविद्यालयों में हुए हालिया संघर्षों से कुछ महत्त्वपूर्ण बिन्दु निकालकर आपको बताना चाहती हूँ।

दिल्ली सरकार के अंबेडकर विश्वविद्यालय में करीब 52 सफाई कर्मचारी काम करते हैं। इन्हें ठेके पर रखा गया है। 2019 में जून महीने में इन्हें नौकरी से निकाल दिया गया। इसके लिए उन्हें मात्र एक मौखिक सूचना दी गयी। इसके बाद सफाई कामगार यूनियन के साथ मिलकर उनके जुझारू संघर्ष के कारण उन्हें वापस नौकरी पर रखने के लिए

विश्वविद्यालय प्रशासन मजबूर हुआ। अपने संघर्ष और यूनियन के साथ होने से उनमें हिमात आई। उन्होने पहले से विश्वविद्यालय में व्याप्त महिलाओं के शोषण के खिलाफ भी बोलना शुरू किया। इस संबंध में यह जानना आवश्यक है कि महिलाओं के शोषण, यौन उत्पीड़न के लिए जिम्मेदार सीधे तौर पर दलित वाल्मीकि जाति से ही आने वाला सुपरवाइज़र था। यह सुपरवाइज़र कई सालों से अपनी दबंगई, और कभी भी किसी को भी काम से निकाल देने की ताकत का इस्तेमाल कर महिला कामगारों का यौन उत्पीड़न करता था।

इस संबंध में जब दोबारा सभी सफाई कर्मचारियों को नौकरी पर वापस रखा गया, तो उनमें से एक कर्मचारी को सुपरवाइज़र ने कहीं और नौकरी देने का वादा किया। सुपरवाइज़र इस महिला का पहले से ही नौकरी पर लगाए रखने के लिए यौन-उत्पीड़न करता आ रहा था। हालांकि, इस बार इस महिला कामगार को नौकरी पर कहीं और लगाने का झांसा सही नहीं लगा। उसने सुपरवाइज़र के खिलाफ यूनियन की मदद से आंतरिक शिकायत समिति में शिकायत की। लेकिन अपना दबाव बनाकर इस सुपरवाइज़र ने उस महिला को शिकायत को वापस लेने को कहा, और उस महिला कामगार को अपनी शिकायत पर कार्रवाई करवाने से मना कर दिया।

यूनियन के साथ आने से आई हिम्मत से अन्य महिला कामगारों ने अपने यौन उत्पीड़न के खिलाफ बोलना शुरू किया, और विश्वविद्यालय प्रशासन को उस सुपरवाइज़र को काम से निकालने के लिए मजबूर किया। उनके संघर्ष के पहले विश्वविद्यालय प्रशासन महिला कामगारों के उत्पीड़न को पूरी तरह से नज़रअंदाज़ करता आ रहा था।

दिल्ली सरकार के ही एक अन्य उच्च शिक्षण, इन्दिरा गांधी दिल्ली टेक्निकल यूनिवर्सिटी फॉर विमन (IGDTUW) में भी यही स्थिति व्याप्त थी। सुपरवाइजर और ठेका कंपनी दोनों सफाई कामगारों का शोषण करते थे, और महिलाओं के साथ बदसलूकी आम बात थी। अंबेडकर विश्वविद्यालय से लगे हुए इस विश्वविद्यालय के सफाई कर्मचारियों को एयूडी के सफाई कर्मचारियों ने यूनियन से जुड़ने और संघर्ष करने की बात की। यूनियन से जुड़ने के बाद पिछले साल उन्हें सितंबर महीने में ठेका कंपनी बदलने के नाम पर निकाल दिया गया, जबकि ज़्यादातर सफाई कर्मचारी कई सालों से काम कर रहे थे। इनमें कुछ महिला कामगार तो 15 सालों से भी ज्यादा से IGDTUW में काम कर रही थीं। यूनियन और सफाई कामगारों की आपसी एकता के बल पर विश्वविद्यालय प्रशासन को वापस इन कामगारों को नौकरी पर रखना पड़ा। मगर उन्हें किसी अन्य ठेका कंपनी के माध्यम से नौकरी पर रखा गया। हालांकि नौकरी पर रखे जाने के बाद उन्हें तरह-तरह से परेशान किया जाने लगा। महिलाओं से काम कराने के लिए सुपरवाइज़र और फील्ड अफसर भी महिलाएं रख ली गईं। क्योंकि अब महिला कामगारों के पास हिम्मत थी, इसलिए उन्हें पुराने ढर्रे पर काम कराने में विश्वविद्यालय प्रशासन और ठेका कंपनी असमर्थ थी। इसीलिए महिला अफसर और सुपरवाइज़र को उनसे काम कराने या उनके मनमाने आदेश न मानने पर काम से निकालने के लिए लाया गया। यह महिला अफसर और सुपरवाइज़र कामगारों को जातिवादी अपशब्द बोलने से भी हिचकिचाते थे। अपनी शक्ति और विश्वविद्यालय प्रशासन की मूक सहमति से इन्होंने 2 महिला कामगारों, जो शोषण के सबसे मुखर थीं, उनको काम की जगह बदलने के नाम पर विश्वविद्यालय से निकालने की पुरजोर कोशिश की। लेकिन फिर एक बार आपसी एकता और यूनियन के सहयोग से इन महिला कामगारों को विश्वविद्यालय से हटाने के मनमाने फैसले को वापस लेना पड़ा।

इन दोनों उदाहरणों से यह साफ देखा जा सकता है कि महिला कामगारों जो न केवल महिला हैं, बल्कि दलित समुदाय से आती हैं, उन्हें किस तरह से जातीय शोषण-उत्पीड़न के साथ-साथ यौन उत्पीड़न भी झेलना पड़ता रहा

है। इसका सबसे बड़ा कारण ठेका प्रथा होने की वजह से कभी भी नौकरी से निकाले जाने का डर है, और पुराने कामगारों को हटाने का प्रयास व नए और मनमाने आदेशों को मानने वाले कामगारों के लिए मनमाने तरीकों से रुपयों को ऐंठना, आम बात बन गयी है। साथ ही, काम पर रखने का लालच देकर पुरुष सुपरवाइजर द्वारा महिलाओं पर शोषण, अत्याचार व बलात्कार भी होता आ रहा है। साथ ही, डर के कारण एक तो ठेके पर कार्यरत कामगार विश्वविद्यालय प्रशासन से शिकायत करने में हिचकते थे, दूसरे शिकायत दर्ज करने पर प्रशासन द्वारा उसे नजरअंदाज किया जाना, या अफसरों द्वारा शिकायत को दबा देना भी आम है। अगर आरोपित विश्वविद्यालय का शिक्षक या अधिकारी है, तो उसकी शिकायत पर महिलाओं को काम से निकालने की धमकी देना व बार बार शिफ्ट बदलना, रुपये काटना व परेशान करने की पूरी कोशिश करना, और यहाँ तक कि महिला पर ही उलटे आरोप लगाया जाना, उनके घर पर शिकायत करने की धमकी देना, एक चित-परिचित ढर्रा रहा है। ऐसे हालतों में महिलाएं खुद नौकरी छोड़ने पर मज़बूर होती हैं। यही हाल देश में अन्य जगह भी है। महिलाओं के यौन उत्पीड़न पर अगर आंतरिक शिकायत समिति गठित है भी तो वो उनकी शिकायतों को नज़रअंदाज़ करती है। यह हाल तो उन सरकारी शिक्षण संस्थानों का है जहां पर महिला सशक्तिकरण का पाठ पढ़ाया जाता है। अगर भारत में अन्य जगहों का हाल देखें तो ज़्यादातर जगह पर आंतरिक शिकायत समितियां गठित ही नहीं हैं। ज़्यादातर जिलों में ज़िला-स्तर पर कोई भी शिकायत समिति नहीं है, जो कानूनन अनिवार्य है।

इन दोनों विश्वविद्यालयों में सफाई कामगार महिलाओं के लिए अलग से कोई कमरा नहीं हैं जिसमें वह कपड़े बदल सकें, या काम करके आराम कर सकें। उन्हें सर्दी में भी बाहर रहना और गर्मी में सीढ़ियों के नीचे बैठने को मजबूर होना पड़ता है। साथ ही, उन्हें गर्भवती होने पर भी कोई छुट्टी नहीं दी जाती है।

इन विश्वविद्यालयों में कोरोना महामारी और लॉकडाउन में सफाई कामगारों से लगातार काम करवाया गया। जब लॉकडाउन के चलते विश्वविद्यालय के तमाम शिक्षक और अधिकारी छुट्टी पर थे, तो सफाई कर्मचारियों को काम पर विश्वविद्यालय बुलाया जाता था। एक तरफ तो सरकारों ने उन्हें 'कोरोना योद्धा' बताया, वहीं दूसरी ओर उन्हें महामारी के समय मास्क, ग्लव्स, सैनीटाइजर आदि के बिना काम करवाया गया, जिसके कारण कई सफाई मजदूरों की मृत्यु भी हुई। यही नहीं, न केवल महिला कामगारों को काम पर बुलाया जाता था, बल्कि उनको महीनों वेतन तक नहीं दिया जाता था।

यही नहीं महिला कामगारों के जीवन-कार्य चक्र में उत्पीड़न की समस्या लगातार बढ़ ही रही है। क्योंकि ज़्यादातर महिला कामगारों को बेहद ही खराब आर्थिक स्थिति होने के कारण काम के बाद घर का भी काम करना पड़ता है। आर्थिक तंगी के कारण उन्हें वो उपकरण, मशीनें भी मुहैया नहीं होती हैं, जिससे उनका काम आसान हो सके। इस कारण वो थकान, उत्पीड़न, कार्य-संबंधी बीमारी के खतरनाक कुचक्र में फंसी हुई हैं।

काम करने बाहर निकलने पर महिलाओं की आर्थिक स्थिति तो सुधरती है ही, साथ ही घर पर भी परिवारवालों का दबाव कम होता है। इसको ऐसे देखा जाना चाहिए कि महिला के काम करने पर उसपर तरह-तरह की पाबंदियाँ लगाने वाली परिवार की व्यवस्था में बदलाव आता है, और साथ ही महिलाओं की इन पाबंदियों के खिलाफ बोलने और परिवारों में व्याप्त भेदभाव की स्थितियों का मुक़ाबला करने की क्षमता बढ़ती है। काम करने बाहर जाने से उनका घर और बाहर दोनों जगहों पर जीवन में परिवर्तन आता है। लेकिन जब ज़्यादातर महिला कर्मियों की कार्यस्थिति बेहद खराब है, ऐसे में उनके जीवन में कैसे परिवर्तन संभव है? आज जब ज़्यादातर काम की जगहों में शोषण-

उत्पीड़न व्याप्त है, ऐसे में महिला कर्मियों की इनके खिलाफ जद्दोजहद और एकजुट संघर्ष से इस स्थिति में बदलाव आ सकता है। महिला सफाई कामगारों के साथ अन्य सफाई कामगारों के शोषण, यौन उत्पीड़न के खिलाफ बोलने से आज दोनों विश्वविद्यालयों के प्रशासन को न केवल अब महिला कामगारों की स्थिति को लेकर सतर्क होना पड़ा है, बल्कि पहले जो आंतरिक शिकायत समिति उनके मुद्दों को नज़रअंदाज़ करती रही थी, उसे भी उनकी स्थिति की सुध लेने को मजबूर होना पड़ा है। संघर्ष के दौरान जाति, लिंग और वर्ग की तिहरी मार झेल रही महिला कामगार तप कर बाहर निकली हैं, और उनमें नेतृत्व पैदा हुआ है। पहले डरी-सहमी रहने वाली महिला कामगार अब अपने पर होने वाले शोषण-उत्पीड़न के खिलाफ न केवल मुखर हुई हैं, बल्कि पुरुष सहकर्मियों के बीच भी अपनी जगह बनाई है। इससे महिला कामगारों में एक नयी ऊर्जा भी आई है, और अब उनमें से कई कामगार अब अपने खिलाफ होने वाले शोषण-उत्पीड़न को उजागर करने में कोई भी डर महसूस नहीं करती हैं। साथ ही, यूनियन की महिला कार्यकर्ताओं में भी इससे हिम्मत आई है।

ठेका प्रथा से न केवल सफाई कामगारों का शोषण होता आ रहा है, बल्कि वो परंपरागत जातीय काम में फंसे रहने के लिए भी मजबूर हैं। आज ज़रूरत है कि ठेका प्रथा में फंसे बहुसंख्यक मजदूरों में भी सफाई के काम में मजदूरों के इस अति-शोषित हिस्से को विशेष रूप से आगे बढ़ाया जाए। ट्रेड यूनियन आंदोलन द्वारा सफाई कामगारों को संगठित कर उनको पक्की नौकरी और सभी श्रम अधिकार दिलाने की कवायद किया जाना आज महत्त्वपूर्ण है। इस संबंध में यह गौर करना महत्त्वपूर्ण है कि महिला कामगार जहाँ पर यूनियन में संगठित हुई हैं, वहाँ की हालत जहाँ पर वो यूनियन में नहीं हैं, उससे पूरी तरह से अलग है। यूनियन में आने से महिलाओं में हिम्मत और ऊर्जा है, और वो एकजुटता में अपनी ताकत देखती हैं। न केवल ट्रेड यूनियन आंदोलन, बल्कि नारीवादी आंदोलन को भी इस अति-शोषित महिला कामगारों के हिस्से के मुद्दे उठाने के ज़रूरत है। इस तौर पर सफाई कामगार यूनियन नए तरीके से कामगारों न सिर्फ उनके काम की जगहों पर, बल्कि जहाँ वो रहते हैं, उनको संगठित कर रहा है। और इसमें महिला कामगार बढ़-चढ़ कर हिस्सेदारी निभा रही हैं।

सफाई कामगारों को संगठित करके ही न केवल सफाई कामगारों, खासकर महिला कामगारों की स्थिति अच्छी हो सकती है, बल्कि उनके बच्चे इस परंपरागत काम को छोड़कर जिन विश्वविद्यालयों में वो काम करती हैं, वहाँ से पढ़कर अच्छी नौकरी कर सकें। साथ ही, यह भी ज़रूरत है कि सफाई के काम का पूर्णतः मशीनीकरण किया जाए, ताकि इसे भी एक सामान्य काम बनाया जा सके, जो किसी विशेष दलित जाति के लोग ही नहीं, बल्कि कोई भी इस काम को कर सके।